भारतीय शिक्षा दर्शन में गिजूभाई बधेका का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

–डॉ. आदित्य नारायण त्रिपाठी एवं सुमन मिश्रा*
एसो.प्रोफे. एवं विभागाध्यक्ष : शिक्षाशास्त्र
संत तुलसीदास पी.जी. कॉलेज, कादीपुर–सुलतानपुर
*शोधछात्रा–शिक्षाशास्त्र, डॉ. रा.म.लो. अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

शोध–सारांश

गिजूभाई बधेका का जीवन बाल–शिक्षा के प्रति बहुत अधिक संवेदनशील था। उनके जीवन पर माता–पिता के अतिरिक्त महात्मा गांधी के विचारों का भी प्रभाव था। वह हमेशा शिक्षारूपी दर्पण में दर्शन को देखने का प्रयास करते थे। प्राथमिक शिक्षा के अनुभव का प्रभाव उनके जीवनदर्शन में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उनका विचार था कि शिक्षा ही जीवन की निरन्तरता का वह आधार है, जो युगों–युगों तक विकास का पथ–प्रदर्शक के रूप में हमारे समक्ष रहेगा। इसी आदर्श की स्थापना का प्रयास उन्होंने अपनी वकालत के पेशे को छोड़कर किया और आजीवन उसे और पुष्पित–पल्लवित करने का साहस किया। बचपन में शिक्षा को वह भयमुक्त, डाँट–डपट, मार–पीट से इतर प्यार–दुलार के साथ शिक्षा प्रदान करने के पक्षधर रहे। वास्तव में उन्होंने इसी आदर्श को आत्मसात करके समाज को नयी दिशा प्रदान की। गिजूभाई शिक्षा पद्धति के संगठन में बालक को एक महत्त्वपूर्ण मानव के रूप में अपने शिक्षा–सिद्धान्त के आधार पर बालक के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का प्रयास किया था।

शब्द संकेत– जीवनचर्या, ओत–प्रोत, नेस्तनाबूत, यातना, उल्लास, नवाचार, संज्ञान, सृजनशीलता, आत्मावलोकन, बन्धुत्व, सार्थकता, निरीहता

गिरिजाशंकर भगवान जी बधेका का जन्म सम्पन्न परिवार में हुआ था। माता–पिता धार्मिक विचारों से ओतप्रोत थे। इसलिए बधेका के जीवन में इसकी छाप पड़ना आवश्यक था और पड़ा भी, प्रतिष्ठित और उच्च सम्पन्न परिवार में जन्म लेना मतलब खान–पान, रहन–सहन और शिक्षा–दीक्षा का पूर्ण ध्यान दिया जाना। बचपन से धार्मिक विचारों को सहेजने वाले माता–पिता की उँगली पकड़कर सर्वप्रथम माँ सरस्वती की पूजन के साथ चित्तल, सौराष्ट्र के बल्लभीपुर गुजरात की प्राथमिक पाठशाला से इनके शिक्षा का आरम्भ होता है। तत्कालीन परिवेश की छाप उनके मन–मस्तिष्क में ऐसा पड़ा जिसे वह कभी–भूल नहीं पाये, मैट्रिक शिक्षा के पश्चात् 1907 में पूर्वी अफ्रीका में दो वर्ष समय व्यतीत करने के पश्चात् भारत 1909 में वापस लौट आये। तत्पश्चात् 1910 में बम्बई विश्वविद्यालय में कानून की शिक्षा प्रारम्भ की और 1913 में कानून की डिग्री प्राप्त कर बठवाण कैम्प में हाईकार्ट लीडर बन गये। गिजू भाई बधेका पर महात्मा गांधी की गहरी छाप थी। 1915 मं दक्षिणा मूर्ति भवन के सलाहकार के रूप में जुड़ने के पश्चात् 1916 में सम्बद्ध हो गये।[1]

बचपन में मिली प्राथमिक पाठशाला की यादें उन्हें समय–समय पर झकझोरती रहीं। वकालत के क्षेत्र में वह आ तो गये किन्तु उनका मन इस क्षेत्र में कभी लगा नहीं। वकालत पेशे को छोड़कर वह शिक्षक बन गये। 1920 में वह बाल मन्दिर नामक स्कूल की स्थापना की और पूर्णरूप से बाल शिक्षा के प्रति समर्पित होकर बाल शिक्षा हेतु नवीन प्रयोग की सफलता हेतु प्रयास करने लगे। गिजूभाई प्राथमिक पाठशाला की यातनापूर्ण शिक्षा, डाँट–डपट, मार–पीट जैसी कठिन यादों को हमेशा अपनी यादों में रखा। वह इस प्रकार की शिक्षा से अलग शिक्षा की

ओर अपना प्रयोग करना चाहते थे जिस शिक्षा में बच्चों की डाँट–भय या मारपीट के बिना प्यार से कैसे शिक्षा प्रदान की जाय। 1920 से 1936 तक बाल मन्दिर के संचालन के साथ ही उनके बाल मनोविज्ञान और बालदर्शन का उदय होता है। बच्चों के बीच उन्होंने अपने आप को ऐसे स्थापित कर दिया वह उन बच्चों के लिए भगवान हो गये। इसी बाल मन्दिर से गिजूभाई ने ''बाल देवो भव'' के मंत्र को अपनी जीवनचर्या बना लिया। वह बाल जीवन के अपने दिनों एवं वर्तमान बच्चों के बाल मनोविज्ञान का अध्ययन गहराई के साथ किया। बच्चे उन्हें 'मूछों वाली माँ' के रूप में प्यार देते थे। वह अपने आपको बच्चों में समाहित कर लिये।[2]

गिजूभाई शिक्षा पद्धति पर गहन अध्ययन करते हुए बच्चों की शिक्षा को सरल और भयमुक्त बनाने के हमेशा पक्षधर रहे इसीलिए उनका मन हमेशा माण्टेसरी शिक्षा पद्धति का समर्थक रहा है। बच्चों के कोमल मन को बिना भय, डाँट–डपट, यातना के भी अच्छी शिक्षा प्रदान की जा सकती है। बचपन में ही अगर बच्चों के मन–मस्तिश्क में शिक्षा के प्रति भय बैठ जायेगा तब उनका उचित विकास सम्भव नहीं हो सकता। बच्चों को प्यार–दुलार के साथ भी शिक्षा प्रदान की जा सकती है। इसी धारणा को लेकर गिजूभाई ने बाल–शिक्षण हेतु मेहनत और लगन के साथ बच्चों की शिक्षा हेतु एक आदर्श वातावरण तैयार करने में वह अवश्य सफल रहे। दक्षिणामूर्ति बाल मन्दिर गिजूभाई बधेका की कर्मसाधना स्थली के साथ–साथ प्रयोगशाला भर रही। बचपन से लेकर शिक्षक बनने तक उनके मन–मस्तिष्क में उठते ज्वार को दक्षिणामूर्ति बाल मन्दिर की प्रयोगशाला में ही शान्ति प्राप्त हुई। गिजूभाई ने वह सभी प्रयोग किये जिससे बालकों के व्यक्तित्व को बिना किसी भय, डर के भी संवारा सुधारा जा सकता है। मन की तरंगों को उन्होंने अपने लेखन के द्वारा और गति प्रदान की। शिक्षक रूप में उन्होंने बाल–साहित्य उच्च स्थान दिलाया। गुजराती भाषा में उन्होंने लगभग दो सौ से अधिक बाल–साहित्य लिखे साथ–साथ शिक्षकों, विद्यार्थियों के अतिरिक्त माता–पिता हेतु भी उन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की थी।

शैक्षिक पत्रकार के रूप में भी गिजूभाई ने प्रभावशाली ढंग से 'शिक्षण पत्रिका' का सम्पादन किया। स्वयं भी इस पत्रिका में निबन्ध लेखन करते रहे। गिजूभाई बाल शिक्षा को स्वयं पूरी तरह जीना चाहते थे, इसीलिए अपना वकालत का पेशा छोड़कर ''बाल शिक्षण'' के प्रति ऐसा मनोवैज्ञानिक लगाव पैदा हो गया जिसे वह कभी त्याग न सके। ऐसा प्रतीत होता है कि गिजूभाई के ऊपर बचपन की शिक्षा जो यातना पूर्ण थी इतना गहरा प्रभाव पड़ा था कि उस कठोर यादों को वर 'बाल शिक्षा मन्दिर' में अपनी भावनाओं के साथ स्वयं द्वारा रचित पद्धति के माध्यम से शिक्षा प्रदान कर ही पूर्ण कर सके। उन्होंने स्वयं अपने विद्यार्थियों से कहा था कि ''मेरे छात्रों को मेरा आदेश है कि अस्तबल जैसी धूल भरी इन पाठशालाओं को जमींदोंज कर दो। मारपीट और भय दिखाने वाले इन बाल कतलखानों की नींव में बारूद भर कर उड़ा दो। इन्हें नेस्तनाबूद कर दो।''[3] इस प्रकार का दर्द अपने सीने में दबाकर बैठे थे गिजूभाई। उन्होंने अपनी कठिनाई भरी, यातना भरी दर्दभरी शिक्षा पद्धति को ही समाप्त करना चाहते थे। यह उनका अपना मनोविज्ञान था कि शिक्षा भय, यातना, डर के साथ नहीं बल्कि प्यार, दुलार और अपना बनाकर दी जानी चाहिए।

गिजूभाई बधेका के ऊपर कस्तूरबा गांधी और महात्मा गांधी की पूर्ण स्नेह था। गिजूभाई के द्वारा तखतेश्वर मन्दिर के पास स्थापित बाल मन्दिर के उद्घाटन को स्वयं कस्तूरबा गांधी द्वारा 1922

में अपने कर–कमलों द्वारा किया था। 1930 में गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेते हुए गिजूभाई ने शरणार्थी शिविर में निवास के समय वहाँ भी अक्षर–ज्ञान योजना आरम्भ किया था। 1937 में गिजूभाई 'दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन' से स्वयं को अलग करके 1938 में राजकोट में 'अध्यापन मन्दर' की स्थापना की जो शिक्षा के क्षेत्र में उनका अन्तिम योगदान कहा जा सकता है। 23 जून, 1939 को इस शिक्षा के मसीहा का आकस्मिक निधन बम्बई में हो गया। महात्मा गाँधी ने गिजूभाई के साथ ही अपने एक अन्य शिष्य और साथी चन्दूलाल को वर्धा सेवाग्राम से लिखे एक संक्षिप्त पत्र में लिखा कि ''गिजूभाई के बारे में कुछ लिखने वाला मैं कौन हूँ? उनके कार्यों ने तो मुझे सदैव मुग्ध किया है, मुझे दृढ़ विश्वास है कि उनका कार्य आगे बढ़ चलेगा।''[4]

स्कूलों में स्नेहपूर्ण शिक्षा हेतु शैक्षिक स्वतन्त्रता संग्राम सही अर्थों में गिजूभाई बधेका का शिक्षा का स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी बना दिया। शिक्षा व्यवस्था में सुधार हेतु उनका संग्राम निरन्तर चलता रहा। भय, डाँट, मार–पीट वाली शिक्षा का अनुभव उन्हें स्वयं था यथा– जाके पाँव न फटी बिवाई, ते का जाने पीर पराई।। अर्थात् वह स्वयं के अनुभव द्वारा सख्त शिक्षकों एवं कठोर दण्ड व्यवस्था का भय कहीं न कहीं बच्चों को शिक्षा से दूर ही करता है। जिससे शिक्षा का उद्धार नहीं हो सकता। गिजूभाई का विचार था कि बच्चे उत्साह एवं उल्लास के साथ जीवनोपयोगी शिक्षा प्राप्त करें।

गिजूभाई बधेका ने बच्चों के लिए आवश्यक साहित्य का सृजन किया। उन्होंने बाल उपयोगी कहानियाँ, बालगीत, यात्रा वृत्तान्त, साहसिक अभियानों पर भी साहित्य सृजन किया था।, उनके द्वारा सौ से ऊपर पुस्तकों का लेखन किया। उनकी सबसे लम्बी कहानी 'दिवास्वप्न' गिजूभाई की 'गीता' थी जिसे बाल शिक्षा के नवीन संविधान और बाल–साहित्य का आदर प्राप्त है। 'दिवास्वप्न' गिजूभाई बधेका के जीवन के अनुभव का सारांश है जो उनकी कल्पना का स्वरूप प्राथमिक शिक्षा में नवाचार के रूप में सार्थक हुआ।

गिजूभाई बधेका का आदर्श

गिजूभाई बधेका के सम्पूर्ण जीवन का आदर्श उनके भीतर के शिक्षक के रूप में हमेशा जीवन्त रहा है। बचपन में विद्यालय का वातावरण उनके भीतर इस कदर रच–बस गया था कि उस वातावरण को परिवर्तित कर बच्चों के लिए ऐसा आदर्श वातावरण तैयार करना जो बिना भय एवं हिचक के बच्चे शिक्षा प्राप्त कर सकें। बधेका जी स्वयं दिल से बच्चों का सम्मान करते थे। बाल जीवन की परिस्थितियों का उन्हें विधिवत् संज्ञान था। इसलिए वह उनके समाधान का निरन्तर प्रयास करते रहते। गिजूाई का बच्चों के सामर्थ्य, सृजनशीलता, दृढ़ विश्वास के प्रति उनका विचार था कि ''बच्चों द्वारा मुझे प्रेम देकर नई जिन्दगी प्रदान की है। उन्हें सिखाते–सिखाते हमने स्वयं ही सीखा है। उनका अवलोकन करते–करते स्वयं के आत्मावलोकन का अवसर प्राप्त हुआ। जीवन के पथ पर बच्चों को नीचे से ऊपर ले जाते हुए मुझे भी उनके साथ ऊपर पहुँचने का अवसर प्राप्त हुआ। उनका गुरू होने के बावजूद भी मैंने उनके भीतर के गुरुत्व को देखा है।''[5]

गिजूभाई बधेका के जीवनादर्श में वैवाहिक जीवन की सार्थकता, बाल–महिला बालकों के प्रति माता–पिता के कर्त्तव्य, बाल–दर्शन, बच्चों की चीजें, धनवानों के बच्चे, बन्धुत्व का विकास, ईश्वर, मानव, धार्मिकता एवं सत्य के साथ आदि पर उनका दृष्टिकोण बिल्कुल स्पष्ट था। गिजूभाई का विचार था कि जिस प्रकार बीज के भीतर ही वृक्ष है, फूल है फल है उसी प्रकार

बच्चों के भीतर भी एक सम्पूर्ण मुनष्य निवास करता है। वह कहते थे कि ''वे ही तो दोषी हैं जिन्होंने अपने तुच्छ और क्षुद्र स्वार्थ के कारण बच्चों की आवश्यकता की ओर देखा तक नहीं। वह स्वयं अपने माया–जाल में उलझे रहे बच्चों की ओर ध्यान नहीं दिया कि बच्चा किस रास्ते पर जा रहा है। इसी कारण असहाय सत्यविहीन और निस्तेज युवक के निर्माता हैं।''[6]

बाल–महिला के सन्दर्भ में गिजुभाई कहते हैं– ''जो व्यक्ति बच्चों के साथ बच्चा बनकर खेल नहीं सकता, वह सहृदय कैसे हो सकता है। प्रेम के मामले में आप कहीं ओर भी हो सकते, बच्चों के सामने नहीं। बच्चा प्रेम का सच्चा दर्पण होता है।''[7] बालकों के प्रति माता–पिता के कर्त्तव्य प्रति गिजूभाई ने कहा कि ''सच्चा प्रेम तो इस बात में है कि हम उन्हें उनकी पसन्द के काम करने दें, और वे अपनी पसन्द का काम कर सकें। इसके लिए बच्चों को अनुकूल परिवेश भी मिलना चाहिए। उनके जीवन में बाधा नहीं आनी चाहिए।''[8] गिजू भाई बधेका का बाल–दर्शन किसी जटिल विचारधारा की स्थापना तो नहीं करता किन्तु पाठशाला में बच्चों का प्रवेश इस प्रकार करते हैं जैसे कोई मन्दिर में श्रद्धा एवं प्रेम के साथ करता है। बच्चों के स्वतन्त्र विचरण के पक्षधर वह हमेशा थे। इस स्वतन्त्रता के आदर्श को वह माण्टेसरी से ग्रहण किये थे। इसी पद्धति को वह परिवार और समाज में भी लागू करना चाहते थे।

गिजूभाई धनवान बच्चों एवं गरीब बच्चों के बीच का मनोविज्ञान भली–भाँति जानते–समझते थे। गरीबी और अमीरों के बीच का अन्तर समाप्त कर समानता के पक्षधर थे। स्वयं महात्मा गांधी भी गिजूभाई के बाल–दर्शन को स्वीकार करते थे। यंग इण्डिया 19.11.1931 के अंक में गिजूभाई बधेका के बालदर्शन के संदेश को सम्पूर्ण विश्व के समक्ष रखा था। उन्होंने लिखा था कि ''अगर हमें दुनिया में सच्ची शान्ति प्राप्त करनी है और अगर हमें युद्ध के विरुद्ध सच्ची लड़ाई लड़नी है तो हमें बालक–बालिकाओं से उसका आरम्भ करना होगा और अगर बालक–बालिका अपनी स्वाभाविक निरीहता से बड़े होंगे, तो हमें संघर्ष नहीं करना पड़ेगा। हमें निष्फल और निरर्थक प्रस्ताव पास नहीं करने पड़ेंगे। हम प्रेम से अधिक प्रेम की ओर एवं शान्ति से अधिक शान्ति की ओर बढ़ेंगे।''[9]

गिजूभाई बधेका बन्धुत्व की भावना के विकास में ईश्वर की आस्था एवं मानव के बलिदान के महत्त्व को ही मानव को समाज का अंग माना है। वह धर्म के तत्त्व को अन्तरात्मा से जोड़कर देखा था। गिजूभाई ने भी महात्मा गाँधी के सत्य, अहिंसा को सभ्य समाज की स्थापना हेतु आवश्यक माना था।

सन्दर्भ–सूची–

1. बधेका, गिजूभाई, ऐसे हो शिक्षक, गीतांजली प्रकाशन, जयपुर, पृ. 3
2. दवे रमेश, गिजूभाई के शैक्षिक विचार और प्रयोग, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली, पृ. 9
3. शर्मा, ऊषा, 'गिजूभाई का शिक्षादर्शन, परिप्रेक्ष्य न्यूपा, वर्ष–12, अंक–2, अगस्त–2005
4. बधेका, गिजूभाई, 'कथा–कहानी' संस्कृत साहित्य, विश्वासनगर, नई दिल्ली, पृ. 7
5. शर्मा, ऊषा, 'गिजूभाई का शिक्षादर्शन, परिप्रेक्ष्य न्यूपा, वर्ष–12, अंक–2, अगस्त–2005
6. बधेका, गिजूभाई, 'माता–पिता से', प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 7
7. बधेका, गिजूभाई, 'माता–पिता से', प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 17
8. वही, पृ. 72
9. महात्मा गांधी, 'यंग इण्डिया', 19 नवम्बर, 1931